bdkbZ 11 lÙkk vkSj izkf/kdkj

bdkbZ dh :ijs[kk

11.1 प्रस्तावना

11.2 सत्ता का आनुभाविक (empirical) अध्ययन

11.3 सत्ता–संबंधी संकल्पनाएँ

11.4 सत्ता – मार्क्सवादी और पश्चिमी उपगम्य (approach)

11.5 प्राधिकार–संबंधी संकल्पना

11.6 प्राधिकार–संबंधी संकल्पना का विकास

11.7 सारांश

11.8 अभ्यास

11-1 izLrkouk

राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय दोनों ही कार्यक्षेत्रों में, राजनीति, राजनीतिक संस्थाओं व नियमबद्ध प्रक्रम के राजनीतिक आन्दोलनों को समझने और विश्लेषण करने हेतु सत्ता की संकल्पना ही एक कुन्जी है। राजनीति–सिद्धांत का केन्द्र यही है। एच.डी. लैसवैल व ए. कैपलन ने घोषित किया, ''सत्ता की संकल्पना ही शायद सम्पूर्ण राजनीति–विज्ञान में सबसे अधिक महत्त्व की है : राजनीतिक प्रक्रिया सत्ता का विकसन, विच्छेद और व्यवहार ही है।'' यह सत्ता की संकल्पना ही है जिससे राजनीति–विज्ञान मूल रूप से सम्बद्ध है। मैकाइवली और हॉब्स जैसे विचारकों ने सत्ता के अध्ययन की राजनीति की केन्द्रीय विषयवस्तु के रूप में वकालत की। हॉब्स लिखते हैं : ''समस्त मानव–जाति की एक सामान्य अभिरुचि है, सत्ता के बाद सत्ता की एक अनन्त और अविश्रान्त इच्छा जो सिर्फ़ मौत में ही निर्मूल होती है।'' कुछ दशक पूर्व, फ्रेडरिक वॉदकिन्स ने सुझाव दिया कि ''राजनीति–विज्ञान का उपयुक्त कार्यक्षेत्र राज्य का अथवा किसी अन्य विशिष्ट संस्थागत समष्टि का अध्ययन नहीं, बल्कि सभी संस्थाओं की जाँच–पड़ताल है जहाँ तक कि उनको सत्ता–संबंधी समस्या को दृष्टांत द्वारा समझाने हेतु दर्शाया जा सकता है।'' संभवतः इस दृष्टिकोण को विलियम ए. रॉबसन द्वारा और अधिक सुदृढ़ किया गया जब उन्होंने सुझाया कि ''समाज के साथ सत्ता ही मुख्यतः सम्बद्ध है – उसकी प्रकृति, आधार, प्रक्रियाएँ, कार्यक्षेत्र और परिणाम। राजनीति–वैज्ञानिक की रुचि का मुख्य बिन्दु स्पष्ट और असंदिग्ध है; यह सत्ता हासिल करने अथवा बनाए रखने, सत्ता को प्रयोग करने अथवा दूसरों पर प्रभाव डालने, अथवा उस प्रयोग को रोकने हेतु संघर्ष पर केन्द्रीभूत होती है।''

सत्ता की संकल्पना और व्यवस्थापरक प्रक्रियाओं में उसके विभिन्न रहस्योद्घाटनों का अध्ययन करते समय, उसका स्मरण हो आता है जो जॉन वुडवार्ड ने अपनी अग्रणी कृति, *इण्डस्ट्रियल ऑर्गनाइज़ेशनः थिअरी एण्ड प्रैक्टिस* में कहा था। उन्होंने कहा, ''ऐसा लगता है कि यह समाजविज्ञानवेत्ता अपने अनुसंधान हेतु एक यथातथ्य प्रयोगमूलक ढाँचा स्थापित करने के अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सकता।'' यह, कुल मिलाकर, वस्तुतः सत्ता के प्रचालक–प्राधारों के विश्लेषणार्थ बहु–आयामी स्वभाव वाली एक जटिल प्रक्रिया रही है, सामाजिक व्यवस्था के एक केन्द्रीय विषय के रूप भी और

महत्त्वाकांक्षी लोगों के एक प्रेरणा–कारक के रूप में भी, चाहे तो हिटलर के जर्मनी का उदाहरण लें अथवा स्टालिन के रूस का।

इससे पूर्व कि हम सत्ता के विभिन्न संकल्पनात्मक आयामों के विषय में विचार–विमर्श करें, यह अभीष्ट होगा कि राजनीति के छात्र सत्ता की संकल्पना संबंधी कुछ बुनियादी ज्ञान प्राप्त करें। चलिए, देखते हैं कि एण्ड्रयू हेवुड को अपनी कृति *पॅलिटिकॅल थिअरी : ऐन इन्ट्रोडक्शन* (पालग्रेव, 1997, पृ. 122) में सत्ता की संकल्पना पर अपनी परिचयात्मक टिप्पणियों में क्या कहना पड़ा :

> समस्त राजनीति सत्ता विषयक है। राजनीति के व्यवहार को अक्सर सत्ता प्रयोग से कुछ अधिक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और शैक्षिक विषय, सारांशतः, सत्ता का अध्ययन ही है। निस्संदेह, राजनीति–विज्ञान के विद्यार्थी सत्ता के विद्यार्थी हैं : वे यह जानने का प्रयास करते हैं कि इसे कौन धारण करता है, यह कैसे प्रयोग की जाती है और यह किस आधार पर प्रयोग की जाती है। ऐसे मामले आधुनिक समाज में सत्ता–वितरण विषयक गहरे और आवर्ती समझौतों में विशेषतः प्रतीयमान होते हैं। क्या वितरित सत्ता व्यापक और समान रूप से विसर्जित है, अथवा यह कुछ, किसी 'सत्ता आभिजात्य' या 'शासक वर्ग', के हाथों में ही संकेन्द्रित है? क्या सत्ताएँ अनिवार्यतः सौम्य लोगों को अपने सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में समर्थ करती हैं, अथवा यह उत्पीड़न या प्रभुत्व स्थापन का ही कोई रूप है? ऐसे प्रश्न, बहरहाल, सत्ता को परिभाषित करने के कठिन कार्य द्वारा बिगाड़ दिए जाते हैं। शायद क्योंकि सत्ता राजनीति की समझ के प्रति इतनी केन्द्रिक है कि इसका अर्थ घोर विवाद में घिरा है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि सत्ता की कोई एक, तयशुदा संकल्पना नहीं है, बल्कि इसकी अनेक प्रतिद्वंद्वी संकल्पनाएँ या सिद्धांत हैं।
>
> इसके अतिरिक्त, यह धारणा कि सत्ता प्रभुत्व स्थापन अथवा शासन का एक रूप है जो एक व्यक्ति को दूसरे की आज्ञापालन पर मज़बूर करता है, इस समस्या का सामना करती है कि राजनीतिक जीवन में सत्ता बड़े ही सामान्य रूप से जनता की स्वीकृति व ऐच्छिक आज्ञापालन के माध्यम से प्रयोग की जाती है। वे 'सत्तासीन' महज पालन करवाने की क्षमता ही नहीं रखते, बल्कि आमतौर पर समझा जाता है कि ऐसा करने का अधिकार भी रखते हैं। यह बात सत्ता व प्राधिकार के बीच भेद पर प्रकाश डालती है। वैसे, ऐसा क्या है जो सत्ता को प्राधिकार में बदल देता है, और किस आधार पर प्राधिकार का अधिकारपूर्वक प्रयोग किया जा सकता है? यह, अन्ततोगत्वा, वैधता के विषय में प्रश्न करने की ओर प्रवृत्त करता है, यथा यह बोध कि सत्ता इस तरीके से प्रयोग की जाए जो कि न्यायाकूल, न्यायसंगत या स्वीकार्य हो। किसी शासन–प्रणाली की अपने नागरिकों की राजभक्ति व समर्थन को हासिल करने की क्षमता से जोड़कर, वैधता को सामान्यतया स्थिर सरकार के आधार के रूप में देखा जाता है। सभी सरकारें वैधता पाने की चेष्टा करती हैं, परन्तु वे इसे किस आधार पर प्राप्त करती हैं, और तब क्या होता है जब उनकी वैधता पर संदेह किया जाता है?

अन्तरराष्ट्रीय इतिहास के वर्ष–दर–वर्ष वृत्तान्त सत्तार्थ संघर्ष के अध्ययन हेतु एक साक्ष्य हैं। मैकाइवली व थॉमस हॉब्स के समय से ही अनेक सामाजिक व राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा सत्ता की एक विश्लेष्य

आदर्श के रूप में व्याख्या व गवेषणा की जाती रही है। आप शायद इस दृष्टिकोण से सहमत होंगे कि संघवादी, पैरेटो और मॉक्सा, सत्ता सिद्धान्तवादी हैं। यह विचारधारा जौर्ज कैट्लिन, चार्ल्स मैरियम, बर्त्रान्द रसल, हैरॅल्ड लैसवैल, व अन्य कई लोगों द्वारा आगे और विकसित की गई। अर्थव्यवस्था पर उदारीकरण व भूमण्डलीकरण के छा जाते ही, सत्ता का आनुभाविक अध्ययन एक विशेष प्रकार का सामाजिक सिद्धांत बन गया है।

11-2 lÙkk dk vkuHkkfod (Empirical) v/;;u

अनुभव के बल पर सत्ता की संकल्पना का अध्ययन व विश्लेषण करना कभी कोई आसान काम नहीं रहा। जैसा कि मौरिस कौलिंग अपनी अग्रणी कृति, *द नेचर एण्ड लिमिट्स ऑफ पॅलिटिकॅल साइन्स* (1963), में कहते हैं कि आधुनिक समाज में, यहाँ तक कि लोकतंत्र में भी, सत्ता के केन्द्रों तक पहुँचने में वाक़ई मुश्किलें हैं। अपेक्षाकृत आसान है ''समकालीन सत्ता को प्रकाशित करने की बजाय उसके विषय में सत्य को खोजना; मुश्किलें उनके लिए सबसे ज़्यादा बड़ी हैं, जो सहभागी रहे हैं''।

कॉर्नहौज़र ने अपनी संपादित पुस्तक, *प्रॉब्लम्स ऑफ पॉउवर इन अमैरिकन डिमॉक्रसि* (1957) में अपने लेख, ''पॉउवर रिलेशनशिप्स एण्ड द रोल ऑफ द सोशल साइन्टिस्ट्स'' में किसी राजनीतिक व्यवस्था में सत्ता के विभिन्न केन्द्रों को समझने हेतु कार्यप्रणालियों में आने वाली अड़चनों के विश्लेषण का प्रयास किया है। उनके अनुसार, ये अड़चनें कुछ–कुछ ''कैसे समाज वैज्ञानिक आप हैं?'', ''समाज का इतना बड़ा पक्ष, किस प्रयोजन से, किसके प्रयोगार्थ, किस प्रकार की जानकारियाँ चाहता है?'' जैसे प्रश्नों के रूप में व्यक्त हो सकती हैं। सत्ता के अध्ययन में विधियों व उद्देश्यों के संबंध में सुसंगत सिद्धांत व आदर्श रखना संभव नहीं है। मैकाइवली, हॉब्बस, लॉक, टी.डी. वैल्डन, ओकशॉत्, बटरफील्ड, ई.एच. कार आदि जैसे राजनीति–वैज्ञानिकों की सैद्धांतिक कृतियों में ये अड़चनें सुन्दरता के साथ प्रस्तुत की गई हैं।

11-3 lÙkk&lac/kh ldYiuk,

सत्ता संबंधी किसी भी चर्चा में, यह बात दिमाग़ में रखनी पड़ती है कि प्रख्यात अन्वेषकों द्वारा सत्ता पर अधिकांश अध्ययन उनके समय–सीमा के बाहर राजनीति की सरलीकृत व्याख्याओं के प्रकटन मात्र ही हैं; ये उनके समकालीन समाज व युग की यथार्थ राजनीति–संबंधी प्रस्तुतियाँ नहीं हैं। सीमित शाखा–प्रशाखाओं वाले साधारण विषयों के चुनाव में एक वस्तुपरक पूर्वाग्रह उन कार्यप्रणालीगत निष्कर्षों की ओर भली–भाँति प्रवृत्त कर सकता है जो 'महासमाज' के मामले में सत्य नहीं हो सकती। सत्ता अध्ययनों पर अपनी प्रसिद्ध कृति, *हू गवर्न्स ?*, की भूमिका में रॉबर्ट डाल ने कहा, ''अनेक समस्याएँ जो एक बड़े क्षेत्र पर अनम्यप्राय हैं, इस छोटे से कैनवास पर अपेक्षाकृत सरलता से निपटायी जा सकती हैं। यह, संभवतः, पूरी तरह आकस्मिक नहीं है कि वे दो राजनीति–सिद्धांतवादी जिन्होंने एक व्याख्यात्मक राजनीति–विज्ञान को विकसित करने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई अरस्तू व मैकाइवली ही थे, जिन दोनों ने अठारह शताब्दियाँ दूर होकर भी राजनीति को नगर–राज्य के अपेक्षाकृत छोटे, अधिक मानवीय पैमाने पर देखा।''

अधिकांश अन्वेषक जो सत्ता की संकल्पना का विश्लेषण करते हैं, प्रायः दो कथनों से प्रारम्भ करते हैंः कि किसी भी राज्य–व्यवस्था में कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ रखते हैं, और कि सत्ता एक इच्छा की वस्तु, एक 'उपयोगिता' है। सत्ता बोधगम्य रूप से गौरव, आदर, सम्मान व प्रतिष्ठा से जुड़ी होती है। हमें, निस्संदेह, आदमी की सत्ता को उस उच्चपद की सत्ता से दूर रखकर देखना होता है, जो प्राधिकार व वैधता की गारण्टी देती है।

आभासी और यथार्थ सत्ता के बीच भेद करने के विषय में हमें सावधान भी रहना पड़ता है। सत्ता के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करते समय, मैसलो महत्त्वाकांक्षा–मनोनिदानशास्त्र के साथ–साथ कुछ लोगों के मानसिक ढाँचे के बारे में भी बताते हैं। वह कहते हैं, ''उनकी जंगल फिलॉसॅफ़ि (सत्तावादियों की) उनके बड़े हो जाने और जंगल से बाहर आ जाने पर भी नहीं बदलती। यह नए तथ्यों से परहेज़ करती है। यह रुग्ण है, क्योंकि यह एक लम्बे अतीत के परिणामस्वरूप बदलती है, न कि यथार्थ वर्तमान के।'' ये लोग मानसिक रूप से पथ–भ्रष्ट लोग हैं, क्योंकि वे जिसके पीछे भागते हैं वह मृग–तृभणा के सिवा कुछ नहीं है। मैसलो निष्कर्ष निकालते हैं कि ''निस्संदेह उनके लिए जो वास्तव में एक जंगल–जैसे संसार में रहते हैं – और बहुत से ऐसे हैं जो ऐसा करते हैं – जंगल फिलॉसॅफ़ि यथार्थवादी और तर्कसंगत है।''

11-4 lÙkk & ekDlokn vkj if'peh mixE; (Approach)

सत्ता की संकल्पना राजनीति–सिद्धांत की मौलिक संकल्पनाओं में से एक है। समाजवादी व पूँजीवादी दोनों ही समाजों में सत्ता–स्वभाव का विश्लेषण राजनीतिक के साथ–साथ राज्य की प्रकृति को भी समझने के लिए अनिवार्य है। लेनिन ने कहा, ''सत्ता के प्रश्न से परिहार अथवा उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है, क्योंकि यही किसी क्रांति के विकसन में, और उसकी वैदेशिक व स्वदेशी राजनीति में, हर बात को तय करता मुख्य प्रश्न है।'' सत्ता की संकल्पना का अध्ययन करते समय, अक्सर जो हमारे दिमाग़ में आता है, वह है मार्क्सवादी विचारकों द्वारा एक विस्तृत अर्थ में इसका प्रयोग। मार्क्स व लेनिन दोनों ने ही किसी राजनीतिक व्यवस्था में सामाजिक संबंधों के साथ–साथ मनुष्य व पर्यावरण के बीच सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला है। सहस्त्राब्दि भर, वास्तव में, प्रकृति ही हमेशा सत्ता की विषय और वस्तु दोनों रही। इससे पूर्व, मनुष्य पर प्रकृति के नियंत्रण ने सत्ता की एक भिन्न परिभाषा दी थी। विज्ञान व प्रौद्योगिक में विकास वजह से प्रकृति पर मनुष्य के नियंत्रण के साथ ही, सत्ता की संकल्पना ने एक नई परिभाषा व आयाम ले लिया। राज्य संरचनाओं में राजनीतिक व सामाजिक प्रभुत्व स्थापन के एक समानार्थी के रूप में, सत्ता ने बहु–आयामी रूप धर लिए।

मार्क्सवादी पहुँच व परिभाषिकी में, सत्ता की संकल्पना को क्रांतियों के माध्यम से राज्य–सत्ता के सहारे जाना जाता है। लेनिन ने कहा, ''राज्य–सत्ता का एक वर्ग से दूसरे को पहुँचना ही क्रांति का प्रथम सिद्धांत, मूल लक्षण है, इस शब्द के यथार्थ वैज्ञानिक व व्यवहारमूलक राजनीतिक दोनों ही अर्थों में।'' किसी भी क्रांति का मूल प्राण स्वतंत्र राज्य में सत्ता–प्रश्न ही होता है। उसने कहा, ''वर्ग संघर्ष सिर्फ़ तभी वास्तविक, अनुकूल व विकसित होता है, जब वह राजनीति की परिधि को अंगीकार करता है। राजनीति में, स्वयं को तुच्छ विषयवस्तुओं तक सीमित रखना भी संभव है, और गहरे, नितांत जड़ तक जाना भी संभव है। मार्क्सवाद किसी वर्ग संघर्ष को पूर्णतः विकसित, राष्ट्र–व्यापी के रूप में तभी मानता है, जब वह राजनीति को महज अंगीकार ही नहीं करता बल्कि राजनीति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ – राज्य–सत्ता के संगठन, को भी समझ लेता है।''

सत्ता व राज्य के बीच भेद करते समय, लेनिन का विचार था कि सामाजिक सत्ता राज्य–उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थी, और ''राज्य नष्ट हो जाए'', तो भी उसके बाद कायम रहेगी। प्योत्र स्त्रूव के इन विचारों की कि राज्य वर्गों के उन्मूलन पश्चात् भी कायम रहेगा, आलोचना करते हुए लेनिन ने कहा, ''सबसे पहले, वह बिल्कुल ग़लत रूप से अवपीड़क सत्ता को राज्य के विशिष्टता प्राप्त करते लक्षण के रूप में मानता है : हरेक मानव–समुदाय में एक अवपीड़क सत्ता होती है; और जनजातीय व्यवस्था में व परिवार में भी होती थी, परन्तु वहाँ कोई स्वतंत्र राज्य नहीं था ... राज्य का विशिष्टता प्राप्त करता अभिलक्षण ही उन लोगों के पृथक् वर्ग की विद्यमानता है, जिसके हाथों में सत्ता संकेन्द्रित है''।

मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार, राजनीति के प्रभावक्षेत्र में राज्य के सभी पहलू आते हैं; यह वर्गों के बीच सभी प्रकार के संबंधों का अर्थ देती है, चाहे वो आर्थिक हों, सैद्धान्तिक हो, अर्ध–मनोवैज्ञानिक हो या कि अन्य। लेनिन ने कहा, ''यही है राज्य व सरकार हेतु सभी वर्गों व सामाजिक स्तरों के संबंधों का प्रभावक्षेत्र, सभी वर्गों के बीच अन्तर्क्रिया का प्रभावक्षेत्र''।

सत्ता शब्द अक्सर एक भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है, अनेकार्थी व अनिश्चित दोनों ही तरीके से। फ़्योदॅर बुर्लात्सकी के अनुसार, ''प्राकृतिक वैज्ञानिक प्रकृति पर सत्ता की बात करते हैं, दार्शनिक समाज के वस्तुपरक नियमों पर, समाजशास्त्री सामाजिक सत्ता की, अर्थशास्त्री आर्थिक सत्ता की, न्यायविद् राज्य–सत्ता की, मनोवैज्ञानिक आदमी की स्वयं पर सत्ता की, इत्यादि।'' इस प्रकार, यद्यपि हर विशेषज्ञ सत्ता के महत्त्व की बात करता है, सत्ता का कोई स्पष्ट अर्थ दे पाना असंभवप्राय है।

पाश्चात्य समाजशास्त्री सत्ता का पूरे सामाजिक बलगतिविज्ञान में एक अनिवार्य कारक के रूप में महत्त्व बताते हैं। फ्रांसीसी समाजशास्त्री ''सत्ता पर छाये रहस्य–परिमल'' की बात करते हैं। माइकल हल्बैक़ लिखते हैं, ''वर्तमान में सत्ता की दृश्यघटनाएँ सार्वजनिक कानून के सिद्धांतियों व राजनीति–विज्ञानिकों की ओर ध्यान नहीं देतीं।'' फ्रांसोआ बुरीकुद इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अपने राजनीतिक रूप में, सत्ता में सर्वाधिक दुर्जेय गूढ़ प्रश्न निहित हैं। समाजशास्त्री क्रोज़ियर का मत है कि सत्ता सामाजिक जीवन की सभी प्रक्रियाओं में विद्यमान है। सत्ता–स्रोत से संबंधित निर्दिष्टता का वस्तुतः अभाव है। पाश्चात्य समाजशास्त्री प्रायः मुख्यतः सत्ता की मीमांसात्मक विषय–वस्तु को अस्वीकार करते हुए, अत्यधिक अनुभवाश्रित हैं, अथवा सत्ता के नितांत समाजीकरणशील आयाम के मोह में पड़े हैं। मौरिस दुवर्जर सत्ता का एक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। वह सत्ता अथवा प्राधिकार को किसी आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक दृष्टिकोण से देखे जाने की आलोचना करते हैं। उनका प्रस्ताव है कि ज़ोर मुख्यतः उन व्यवहारमूलक विधियों पर दिया जाना चाहिए, जिनके द्वारा सत्ता आदर पाती है और उन साधनों पर भी जिनके द्वारा वह वश्यता–स्वीकरण प्राप्त करती है। दुवर्जर, बहरहाल, अपनी उक्तियों में बहुत सुसंगत नहीं है। सत्ता के कुछ आम संकेतों पर चर्चा करते समय, वह सत्ता की मीमांसात्मक मूल शिक्षाओं में लिप्त हो जाना पसंद करते हैं।

कुछ पाश्चात्य विचारकों ने सत्ता की जैविक संकल्पना के बारे में भी बात की है। यूनानी दिनों को याद करें, तो अरस्तू ने सत्ता को समाज की एक प्राकृत अवस्था, प्रकृति समाज के लक्षण व प्रक्रिया को तय करते हुए, के रूप में देखा।

अरस्तू ने कहा, ''इसलिए कि कुछ को शासन करना चाहिए और, दूसरों को शासित होना चाहिए, एक ऐसी बात है जो न सिर्फ़ आवश्यक है, बल्कि लाभकर भी है; अपने जन्मकाल से ही, कुछ अधीनीकरण हेतु, दूसरे शासन करने हेतु निर्दिष्ट हैं। और जबकि शासकों व शासितों दोनों के अनेक प्रकार हैं, वह शासन बेहतर होता है जो बेहतर शासितों पर किया जाता है, उदाहरण के लिए, मनुष्य पर शासन

करना वन्य चौपायों पर शासन करने से अधिक अच्छा है। वह काम बेहतर होता है जो बेहतर कर्मियों द्वारा निष्पादित किया जाता है; और जहाँ एक आदमी शासन करता है और दूसरा शासित होता है, कहा जा सकता है उनके पास काम है।''

कुछ पुरगामी पाश्चात्य समाजशास्त्री जैववाद की ओर इस प्रवृत्ति के पक्ष में नहीं थे। जॉर्ज बर्दीयू ने, उदाहरण के लिए, इस बात पर ज़ोर दिया कि सत्ता व समाज एक साथ जन्मे थे। जॉन विलियम लैपियरे ने सत्ता को सामाजिक संगठन के अनन्य सहजगुण के रूप में, सामाजिक समूह में अन्तर्भूत एक सामाजिक कारक के रूप में माना, और सत्ता की संकल्पना को इस तथ्य से लागू करते हैं कि मनुष्य किसी समूह से ही संबंध रखता है।

हर्बर्ट सायमन जैसे कुछ अन्वेषकों ने सत्ता की एक बड़ी संकीर्ण परिभाषा प्रस्तुत की। सायमन सत्ता व प्रभाव की संकल्पनाओं को समानार्थियों के रूप में प्रयोग करते हैं। जेरार्ड बर्जरॅन जैसे अन्य सत्ता शब्द प्रयोग करने के अनिच्छुक हैं और इस शब्द के स्थान पर ''नियंत्रण'' की संकल्पना को रखना चाहते हैं, ताकि जिसे वे सैद्धांतिक उदासीनता कहते हैं, को सुनिश्चित कर सकें। इस प्रकार की पहुँच, दरअसल, कोई वैज्ञानिक विश्लेषण प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकती।

''ए डिक्शनरी ऑफ सोशल साइन्सिज़'' में एक परिभाषा कहती है : ''सत्ता अपने सर्वाधिक सामान्य अर्थ में द्योतित करती है : (अ) एक निश्चित संघटन उत्पन्न करने हेतु योग्यता (व्यवहृत अथवा अव्यवहृत) अथवा (ब) अभीष्ट तरीकों से दूसरों के व्यवहार पर, किसी भी साधन से, मनुष्य अथवा समूह द्वारा प्रयुक्त प्रभाव।'' सत्ता की यह परिभाषा मैक्स वैबर के इस प्रतिपादन द्वारा गहरे प्रभावित है : ''सत्ता विरोध के प्रतिकूल भी प्रदत्त सामाजिक संबंधों में रहकर व्यक्ति की इच्छा पूरी करने संबंधी किसी भी क्षमता को सूचित करती है, इस बात से स्वतंत्र कि वह क्षमता किस पर आधारित है।'' सत्ता की यह न्यायविधान–संबंधी संकल्पना उन्नीस सौ पचास व साठ के दशकों के दौरान पाश्चात्य लेखकों के बीच बहुत लोकप्रिय थी।

व्यक्ति की इच्छा पूरी करने संबंधी क्षमता के रूप में सत्ता की पाश्चात्य संकल्पना एंजेल्स के लेखों में प्रकट होती है जब उन्होंने कहा, ''प्राधिकार, उस अर्थ में जिसमें यह शब्द यहाँ प्रयुक्त है, का अर्थ है : हमारी इच्छाओं पर दूसरों की इच्छा का थोपा जाना; दूसरी ओर, प्राधिकार अधीनीकरण को पहले से मानकर चलता है।'' सत्ता की संकल्पना की ओर मार्क्सवादी व पाश्चात्य दोनों ही उपगम्यों का विश्लेषण करते समय हम पाते हैं कि पाश्चात्य उपगम्य संस्थागत इच्छा पर ध्यान केन्द्रित किए जाने हेतु बहुत अधिक आभारी है, यथा किसी समूह अथवा संगठन की प्रबल इच्छा, जबकि मार्क्सवादी उपगम्य सत्ता–आधार के रूप में सामाजिक वर्गेच्छा पर निर्भर करता है। रेमण्ड एरॉन तथा क्रोज़ियर ''इच्छा'' के स्थान पर ''कानून'' का प्रयोग करना पसंद करते हैं, और प्रभुत्व स्थापन के स्थान पर निर्देशन, प्रभाव अथवा नियंत्रण का प्रस्ताव रखना चाहते हैं।

सत्ता, इस प्रकार, सामाजिक जीवन में व्यक्ति की इच्छा को पूरा करने की वास्तविक योग्यता है और राजनीतिक सत्ता राजनीति, विधिसंगत मानकों में व्यक्त किसी प्रदत्त वर्ग, समूह अथवा व्यक्ति की वास्तविक क्षमता का प्रतिनिधित्व करती है, सत्ता–स्वभाव विषयक चर्चा करते समय हमें निम्नलिखित पहलुओं पर नज़र रखनी होती है : सत्ता का एक वर्ग–उपगम्य; समाज की बहुवादी प्रकृति से प्रोद्भूत होता सत्ता का संकेन्द्रण और प्रसार; आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक जैसे सत्ता के विभिन्न पहलू; सामाजिक व व्यक्तिगत सत्ता के बीच विभेदन; विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक प्राधारों में सत्ता के विशेषतासूचक; और इच्छाशक्तिपूर्ण सिद्धांतों से विधिसंगत सिद्धांतों का पृथकत्व।

उन्नीस सौ तीस के दशक में राजनीति को सत्ता के लिहाज़ से एक सम्बन्ध–प्रणाली के रूप में देखा जाने लगा। जौर्ज कैट्लिन व चार्ल्स मैरियम दोनों ही इस प्रवृत्ति के सबसे आगे स्थान पर हैं। तदोपरांत, हैरॉल्ड लैसवैल, एम.ए. कैपलैन जैसे अन्य राजनीति–वैज्ञानिकों तथा दूसरों ने अनुसरण किया। लैसवैल की 'थिअरि ऑफ एलीट्स' जिसमें उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया के आधार–बिंदु के रूप में ''मूल्यों के वितरण'' पर प्रकाश डाला, राजनीति–शास्त्र के अधिकांश अमेरिकी छात्रों का स्रोत–बिन्दु बन गया, और राजनीति–विज्ञान को सत्ता–विज्ञान के रूप में लिया जाने लगा। इस प्रकार, राजनीतिक प्रणालियों के विकास पर पाश्चात्य राजनीति–समाजशास्त्र तथा मार्क्सवादी सोच, दोनों ने ही सत्ता–संबंधी संकल्पना के विकास की दिशा में भारी योगदान किया है।

सत्ता की संकल्पना, हमें नहीं भूलना चाहिए, बहुआयामी है। अक्सर सत्ता व प्रभाव एक–दूसरे के कार्यक्षेत्र में आड़े–तिरछे मिलते–निकलते हैं। कुछ लोग सत्ता के ''साभिप्रायवादी'' व ''संरचनात्मकतावादी जन बोध'' की बात करते हैं। साभिप्रायवादियों के अनुसार, सत्ता राजनीतिक दल, सामाजिक समूहीकरण अथवा किसी हित समूह सरीखी किसी पहचानयोग्य वस्तु का एक सहज गुण है। संरचनात्मकतावादी सत्ता को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में लेते हैं। तैलकॉट् पार्सन्स जैसे समाजशास्त्री तथा अल्थूसैर जैसे नव–मार्क्सवादी संरचनात्मकतावादी विचारधारा से संबंध रखते हैं।

स्टीवन लुकास अपनी पुस्तक ''पॉउवर : ए रैडीकल व्यू (1974)'' में सत्ता के तीन चरणों अथवा आयामों के बारे में बताते हैं। उनके अनुसार, सत्ता निर्णयकारी ढाँचे के प्रतिमान व प्रक्रिया को प्रभावित करने की योग्यता रखती है। यह राजनीतिक कार्यसूची को प्रभावित करने तथा लोगों के विचारों पर नियंत्रण करने की योग्यता भी रखती है। थॉमस हॉब्बस ने सर्वप्रथम अपनी प्रमुख कृति *लिव़ाइअॅथॅन* (1651) में सत्ता की धारणा को निर्णय लेने की क्षमता रखने के रूप में तफसीलवार कहा। यह अधिकतर राजनीति–विज्ञान के क्षेत्र में परम्परागत सोच का आधार रहा है। रॉबर्ट डाल ने अपनी पुस्तक, *ए क्रिटिक ऑफ द रूलिंग एलीट मॉडल* (1958), में सत्ता की इस संकल्पना का समर्थन किया है, जो उनके अनुसार वस्तुपरक व परिमाणवाच्य दोनों ही हो सकती है। राजनीति–वैज्ञानिकों व समाजशास्त्रियों द्वारा यह उपगम्य व्यापक रूप से अपनाया गया, विशेषकर उन्नीस सौ पचास व साठ के दशकों के दौरान अमेरिका में।

निर्णयन् प्रक्रिया को प्रभावित करने की योग्यता के रूप में सत्ता विषयक चर्चा करते समय कुछ अन्वेषक अनिर्णयन् पर ''सत्ता के द्वितीय चरण'' के रूप में प्रकाश डालना पसंद करते हैं। अपने परिणाममय निबंध ''द टू फ़ेज़िज़ ऑफ पॉउवर (1962)'' में पी. बैचरैक व बैरात्ज़ ने दृढ़ता के साथ कहा कि ''उस सीमा तक जो एक व्यक्ति या समूह – चेतन रूप से या अचेतन रूप से – निर्धारित करता है, अथवा नीति–विवादों के जन–प्रचार पर रोक को सुदृढ़ करता है, वह व्यक्ति अथवा समूह सत्ता रखता है।'' जैसा कि शात्ज़नीदर ने कहा, ''कुछ मामले तो राजनीति के भीतर प्रवर्तित किए जाते हैं, जबकि अन्य बाहर चलाए जाते हैं।''

सत्ता का तीसरा आयाम है, किसी व्यक्ति अथवा समूह की विचार–प्रक्रिया को प्रभावित करने की उसकी क्षमता। व्यक्तियों अथवा समूहों के विचार व दृष्टिकोण अधिकतर परिवार, समवय, समान पद व समरुचि वाले लोगों, स्कूलों, चर्चों, जनप्रचार माध्यमों, राजनीतिक दलों, तथा कार्यस्थल पर समग्र परिवेश जैसे कारकों द्वारा प्रभावित व निर्मित किए जाते हैं। वैन्स पैकर्ड ने अपने अध्ययन *द हिडिन पर्स्वेडर्स* (1960) में उन कारकों का विश्लेषण किया है, जो एक विशिष्ट दिशा में मानव–व्यवहार को प्रभावित व अनुकूल कर लेने की योग्यता रखते हैं, जिसे स्टीवन लुकास ने ''अपनी नितान्त इच्छाओं

को प्रभावित करना, मूर्त रूप देना अथवा निर्धारित करना'' कहा। अपनी पुस्तक *वन डाइमैन्शनल मैन* (1964) में हर्बर्ट मैर्युअरे, प्रमुख नव–वाम सिद्धान्ती, उन्नत औद्योगिक समाजों में सत्ता के इस पहलू के बारे में बताते हैं, जिसमें समाज की आवश्यकताएँ आधुनिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से अनुकूल की जा सकती हैं। यही है, जिसने उनके अनुसार ''एक सुखद, निर्विघ्न, तर्कसंगत लोकतांत्रिक अनमुक्तता को जन्म दिया।

11-5 ikf/kdkj&lc/kh ldYiuk

सी.जे. फ्रेड्रिक के अनुसार, अधिकार की संकल्पना सूचित करती है, एक आज्ञा–स्रोत को जिसके प्रति अधीनता स्वीकरण बिना किसी प्रलोभन के प्रस्तुत किया जाता है, एक 'सामाजिक तथ्य' को, और किसी अन्तर्संबद्ध, स्वाधीन सामाजिक संरचना के भीतर एक सामाजिक व्यवहार को। इस प्रकार का विश्लेषण यह अर्थ देता है कि प्राधिकार की संकल्पना मूल रूप से शास्त्रीय सिद्धांत का एक भाग है, जिसके अनुसार प्राधिकार अन्य सामाजिक आचरण संबंधी संकल्पनाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा है, जैसे कि नैतिकता, प्रथाएँ, कानून, स्वाभाविक नियम, अनुबंध, औचित्य, तथा उपयोगिता।

प्राधिकार को मोटे तौर पर एक सांवैधानिक साधन के रूप में समझा जाता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अनुपालन अथवा आज्ञापालन अधिकार रख सकता है और दूसरे के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। जबकि सत्ता मोटे तौर पर व्यवहार को प्रभावित करने की *योग्यता* से संबंधित है, 'प्राधिकार' को ऐसा करने के *अधिकार* के रूप में लिया जाता है। दशकों तक राजनीतिक मर्मज्ञों में उस बुनियादी आधार को लेकर मतभेद रहा, जिस पर प्राधिकार टिका था। बहरहाल, वे सभी इस दृष्टिकोण से सहमत थे कि प्राधिकार नैतिक आयाम रखता है। प्राधिकार एक प्रकार की सांवैधानिक सत्ता है और व्यवस्था देता है, जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरों के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। सत्ता योग्यता से अधिक संबद्ध है, जबकि प्राधिकार अधिकार की संकल्पना से जुड़ा है। सत्ता को प्रायः अनुनय, अनुचित दबाव, भय–प्रदर्शन, अवपीड़न अथवा हिंसा से पहचाना जाता है। सत्ता के मामले में सांवैधानिक अधिमंशा का अभाव होता है, जबकि प्राधिकार विधिसंगत व नैतिक दोनों ही अधिमंशाएँ रखता है।

आधुनिक समाजशास्त्री प्राधिकार की संकल्पना तक एक भिन्न दृष्टिकोण से पहुँचे हैं। जर्मन समाजशास्त्री, मैक्स वैबर, प्राधिकार को एक प्रकार की सत्ता, एक 'वैध सत्ता' मानते हैं। वह इसका विश्लेषण इसकी विधिसंगतता विषयक लोगों के विश्वास की विषयवस्तु के रूप में करते हैं। यद्यपि सिद्धान्ततः, सत्ता व प्राधिकार संबंधी संकल्पनाएँ पृथक् विशिष्टताओं के रूप में व्यवहार की जाती हैं, आनुभाविक रूप से, दोनों एक दूसरे की सीमा को पार करने की प्रवृत्ति रखती हैं। जबकि कुछ अन्वेषकों ने प्राधिकार को व्यवस्था व स्थिरता का एक अनिवार्य लक्षण माना है, दूसरों ने इसे सत्तावाद के एक प्रतीक रूप में देखा है।

मूलतः, सत्ता व प्राधिकार दोनों ही परस्पर अनन्य संकल्पनाएँ हैं। प्राधिकार को व्यापक रूप से एक अनुपालन–लाभ के साधन के रूप में समझा जाता है। दूसरी ओर, सत्ता में आती है लक्ष्य–प्राप्ति की योग्यता। यह विभिन्न रूप ले सकती है, जैसे कि अनुचित दबाव, डाँट–डपट, अवपीड़न अथवा हिंसा। प्राधिकार व सत्ता अन्तरस्थ रूप से अन्तर्सम्बद्ध हैं। प्राधिकार का सत्ता के अभाव में किंचित ही प्रयोग किया जाता है, और सत्ता हमेशा प्राधिकार की कुछ मात्रा का संकेत करती है।

मैक्स वैबर ने संकल्पनात्मक प्रतिरूपों के तीन 'आदर्श–चिह्नों' की वकालत की : जैसे कि परम्परागत, करिश्माई तथा वैध–युक्तिसंगत प्राधिकार। परम्परागत समाजों में, प्राधिकार प्रमाणित प्रथाओं व परम्पराओं से जुड़ा था। यह सत्ता व विशेषाधिकारों की वंशानुक्रमित प्रणालियों के साथ निकट से जुड़ी थी। प्राधिकार का दूसरा रूप किसी व्यक्ति की 'उत्प्रेरक शक्ति' अथवा व्यक्तित्व के प्रभाव से जुड़ा है। कुछ लोग इस प्रकार के प्राधिकार को ईश्वरीय रूप से विहित मानते हैं। यदा–कदा, इस प्रकार का प्राधिकार संचार–माध्यमों तथा 'व्यक्ति–पूजा' के माध्यम से 'विनिर्मित' किया गया हो सकता है। साथ ही, समग्र सत्ता की यह अपच्छाया राजनीतिक प्रणालियों में सत्तावाद वृद्धि की ओर प्रवृत्त कर सकती है। प्राधिकार के इस रूप की उदारवादी लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणालियों में अपनी मर्यादाएँ हैं। मैक्स वैबर प्रभुत्व स्थापन के तीसरे रूप को वैध–युक्तिसंगत प्राधिकार के रूप में पहचानते हैं। इस प्रकार का प्राधिकार आधुनिक औद्योगिक समाजों में बहुत महत्त्वपूर्ण है और प्रायः वृहद–स्तरीय नौकरशाह संगठनों समाजों के प्रतीक रूप में लिया जाता है तथा यह स्पष्टतः परिभाषित नियमों व प्रक्रियाओं के एक निकाय के माध्यम से संचलित होता है। हमें, बहरहाल, नौकरशाह प्राधिकार के अग्राभिमुखी प्रयाण के तमोमय पक्ष, उसके निर्व्यक्तीकरण तथा अमानवीय सामाजिक परिवेश संबंधी आयामों से अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए।

11-6 ikf/kdkj&lac/kh lidYiuk dk fodkl

सत्ता की संकल्पना समसामयिक अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में एक उच्च रूप से विवादास्पद पहलू बन चुका है। वैयक्तिक अधिकारों व स्वतंत्रताओं की अग्रगामी वृद्धि, मानवाधिकारों हेतु विश्व–व्यापी आन्दोलन तथा एक सहिष्णु अनुमोदक सामाजिक आचारशास्त्र की अग्रगति ने समाज–वैज्ञानिकों को प्रेरित किया कि प्राधिकार की संकल्पना को एक तृण–मूल अनुकूलित मानवीय दृष्टिकोण से देखें। समाज–विज्ञान के क्षेत्र में इस विकास ने एक प्रतिकूल प्रतिक्रिया सुनिश्चित की है, जिसने प्राधिकार के पक्षधरों को इसके महत्त्व पर प्रकाश डालने हेतु प्रेरित किया है।

सत्रहवीं व अठारवीं शती के सामाजिक अनुबंध सिद्धांतों से आरम्भ होकर, समाज–विज्ञान के क्षेत्र में उदारवादी साहित्यों की एक बाढ़–सी आयी रही है, जिसने प्राधिकार हेतु एक उत्कृष्ट औचित्य प्रतिपादन प्रस्तुत किया। इन उदारवादी सिद्धांतों ने ज़ोर दिया कि व्यवस्था व स्थिरता सुनिश्चित करने के साथ–साथ वैयक्तिक स्वतंत्रता व अधिकारों की रक्षा करने हेतु किसी प्रमाणित विधिसंगत प्राधिकार के अभाव में, सामाजिक व्यवस्थाओं के विकास में असंतुलन पैदा हो सकता है। समाज में सत्तावादी प्रवृत्तियों को पक्षपातशून्य करने हेतु, इन उदारवादी विचारकों ने सुझाया कि प्राधिकार 'नीचे' से उद्‌भूत प्रभुत्व, शासितों की स्वीकृति के नितांत आधार रूप में सांवैधानिक प्रावधानों के वैध–युक्तिसंगत विधानों के माध्यम से बाधित हो सकता है।

रूढ़िवादी विचारकों ने, दूसरी ओर, प्राधिकार को, रौज़र स्क्रूटन (1984) को उद्धृत करने हेतु, सभी सामाजिक संस्थाओं के एक अनिवार्य अभिलक्षण, नेतृत्व हेतु एक 'नैसर्गिक आवश्यकता' के रूप में लिया, न कि शासितों से स्वीकृति के एक परिणाम रूप में।

रूढ़िवादी विचार व सिद्धांत अठारवीं शती के अवसान व उन्नीसवीं शती के आरम्भ में बहुत लोकप्रिय हो गए। यह वस्तुतः वर्धमान राजनीतिक व आर्थिक सिद्धांतों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी, जो फ्रांसीसी क्रांति के बुनियादी फ़लसफ़े पर ज़ोर देती थी। कौतुक नहीं कि रूढ़िवादी विचारों की दो धाराएँ उस समय की समाज–विज्ञान मंत्रणाओं में प्रकट हो गयीं। खास यूरोप में रूढ़िवाद के एक सत्तावादी व

परिवर्तन विरोधी रूप वाली उन वर्धमान विचारधाराओं के साथ जिन्होंने सुधार के किसी भी विचार को स्वीकार करने से इंकार कर दिया, ब्रिटेन व अमेरिका में, रूढ़िवाद का एक अधिक सुनम्य रूप उभरा जिसने समाज–सुधारों के रूप में 'प्राकृतिक सामाजिक परिवर्तन' अथवा 'रक्षार्थ परिवर्तन' को चुना।

ये रूढ़िवादी सुधार ज़्यादातर परम्पराओं, इतिहास, व अनुभव के रूप में थे। उन्होंने समाज को एक नैतिक समुदाय के रूप में माना और कानून व व्यवस्था प्रवर्तन को सुनिश्चित करने हेतु एक सशक्त सरकार की ज़ोरदार वक़ालत की। उन्होंने राज्य व व्यक्ति के बीच इतर–सैद्धांतिक तथा योजनाबद्ध अन्तर्क्रियाओं का समर्थन किया।

उन्नीस सौ सत्तर के दशक से ही रूढ़िवादी सिद्धांत 'न्यू राइट' की कड़ी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। न्यू राइट के समर्थक आर्थिक उदारीकरण अथवा नव–उदारीकरण तथा सामाजिक रूढ़िवाद में विश्वास करते हैं। नव–उदारीकरण को प्रायः बीसवीं शती की उदारवादी, समाजवादी व रूढ़िवादी सरकारों की नीतियों की एक प्रतिकूल प्रतिक्रिया समझा जाता है। इसका विश्वास है कि सामाजिक प्राधारों का टूटना उदारवादी व अनुमोदक मूल्यों की वृद्धि का परिणाम है और परम्परागत मूल्यों, सामाजिक अनुशासन व प्राधिकार प्रत्यानयन के पक्ष में है।

रूढ़िवादी राजनीति–दर्शन की हमेशा अभिजात वर्गों व समाज में यथापूर्व स्थिति हेतु उसके समर्थन के लिए आलोचना की जाती रही है। बहरहाल, इस आलोचना के विरुद्ध, रूढ़िवादियों का तर्क है कि चूँकि मानव मात्र नैतिक रूप से व बौद्धिक रूप से अपूर्ण है, यह हमेशा श्रेयस्कर है कि हम परम्परा, प्राधिकार व एक सहभागित संस्कृति के अनुभवयुक्त ज्ञान पर निर्भर करें, न कि राजनीतिक परिकल्पना के दुर्बोध सिद्धांतों को मस्तिष्क में आविष्ट करें। उनके दृष्टिकोण से, प्राधिकार एक अन्तर्भूत सम्पर्क है जो सामाजिक संसक्ति सुनिश्चित करता है और समाज की संरचनाओं को मजबूत करता है।

रूढ़िवाद के समर्थक हैं, एडमण्ड वर्क, माइकल ओकशॉत् तथा इर्विंग क्रिस्तॉल। प्राधिकार के पक्षधर सख़्त दलील देते हैं कि प्राधिकार का क्षयकरण सत्तावाद एवं सर्वसत्तावाद की ओर प्रवृत्त करेगा। हाना अरेन्द्त् का तर्क था कि एक सशक्त परम्परागत प्राधिकार नैतिक व सामाजिक व्यवहार के विकास हेतु अपरिहार्य है, और एक सामाजिक पहचान का अर्थ देता है। अपनी पुस्तक *दि ऑरिजिन्स ऑफ टोटैलिटेरिअनिज़म* (1951) में, वह जताती हैं कि परम्परागत मूल्यों व पदानुक्रमों का पतन ही नाज़ीवाद व स्टालिनवाद के आगमन हेतु उत्तरदायी था। सब कुछ कहकर और कर कर भी प्राधिकार की संकल्पना को हमेशा समाज–वैज्ञानिकों द्वारा बिना हिचकिचाहट के नहीं स्वीकार किया गया। इसको तर्क व आलोचनात्मक समझ के प्रति एक खतरा समझा गया। ऐसी आशंकाओं पर मनोवैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा प्रकाश डाला गया है। विलियम रीच (1897–1957) ने अपनी कृति, द *मास साइकॅलॅजि ऑफ फ़ासिज़्म* (1935), में यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि परम्परागत सत्तावादी परिवारों में पिताओं के प्रभुत्व स्थापन द्वारा करवाया गया हानिकारक दमन फ़ासीवाद की उत्पत्ति हेतु उत्तरदायी हो सकता है। थिओडोर एडोर्नो व अन्य ने *दि ऑथॉरिटेरियन पर्सनॅल्टि* (1950) नामक पुस्तक में इस बात का प्रमाण होने का दावा किया कि प्राधिकार हेतु उत्कट श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति फ़ासीवादी प्रवृत्तियाँ रखते हैं। इस दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक स्टैनली मिलग्रैम (1974) द्वारा अपने उन अध्ययनों में और सुदृढ़ किया गया, जो वियतनाम युद्ध के दौरान नाज़ी नज़रबंदी शिविरों तथा अमेरिकी सेना में रक्षार्थ नियुक्त सैनिकों के व्यवहार पर किए गए थे।

11-7 lkjk'k

राजनीति–विज्ञान के किसी भी अध्ययन में प्रायः उठने वाले प्रमुख प्रश्नों में एक होता है, सत्ता व प्राधिकार के बीच सटीक सम्बन्ध। सिसरो की शब्द–प्रयोग शैली में, ''सत्ता लोगों के पास होती है, प्राधिकार सैनिट में।'' सत्ता व प्राधिकार के बीच उनका साफ–सुथरा भेद धुँधला पड़ जाता है जब हम दशकों आद्योपान्त इन दो संकल्पनाओं के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करते हैं, और इन संकल्पनाओं के पीछे छुपी वास्तविकताओं का सामना करते हैं। सत्ता व प्राधिकार की व्याख्याएँ राजनीतिक व्यवस्थाओं के वैचारिक आयामों के विकास में नानारूप रही हैं। समसामयिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं में 'सत्ता' व 'प्राधिकार' के प्रयोग पर संदेह करने हेतु अच्छे तर्क हैं। यद्यपि कुछ अन्वेषक उग्र समतावाद के प्रति तथा मार्क्सवादी परम्परा की ओर अपनी प्रतिक्रियाओं के रूप में हाना एरेन्दत् की पुस्तक *बिट्वीन पास्ट एण्ड फ़्यूचर* में प्राधिकार विषयक उनके निबन्ध, कार्ल फ्रेड्रिक के परम्परा एवं प्राधिकार संबंधी अध्ययन, और *द ट्वाइलाइट ऑफ ऑथॅरिटि* पर रॉबर्ट निस्बेत के कटाक्षों के बड़े आलोचक हैं, हमें इन लेखों में उन्नतिवाद की धाराओं को देखना नहीं भूलना चाहिए। हैना की क्रांतिकारी राजनीति, तर्क में फ्रेड्रिक की आस्था, तथा बहुवाद हेतु निस्बेत की कमज़ोरी ने सामाजिक आन्दोलनों के क्षेत्र में सोच को क्रांतिमय कर दिया है। सत्ता व प्राधिकार पर समकालीन कटाक्ष मानव सशक्तीकरण की प्रक्रिया की दिशा में तृण–मूल अनुकूलित उपगम्यों के अधिक अनुरूप हैं।

1. राजनीति के बोध व व्यवहार में सत्ता केन्द्रिक है। इसको तीन स्तरों पर प्रयोग किया जा सकता है : निर्णय को लेने अथवा प्रभावित करने हेतु योग्यता के माध्यम से; कार्यसूचियाँ तय करने तथा निर्णय लिए जाने से रोकने की योग्यता के माध्यम से; और लोग जो सोचते व चाहते हैं, इच्छानुकूल कर लेने की योग्यता के माध्यम से।

2. सत्ता ही पुरस्कृत अथवा दण्डित करने की क्षमता पर आधारित, दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने की योग्यता है। तुलनात्मक रूप से, प्राधिकार ही आज्ञापालन हेतु उनके स्वीकृत कर्त्तव्य पर आधारित, दूसरों को प्रभावित करने का अधिकार है। वैबर ने प्राधिकार के तीन प्रकारों के बीच भेद किया : प्रथा व इतिहास पर आधारित परम्परागत प्राधिकार; करिश्माई प्राधिकार, व्यक्तित्व का प्रभाव; और किसी उच्चपद अथवा नौकरी की औपचारिक शक्तियों से व्युत्पन्न वैध–युक्तिसंगत प्राधिकार।

3. प्राधिकार राजनीतिक व वैचारिक असहमतियों को गहरे उकसाता है। कुछ लोग इसे व्यक्तियों को स्पष्ट मार्गदर्शन व समर्थन देने वाला, एक व्यवस्थित, स्थिर व स्वस्थ समाज के संरक्षण हेतु अनिवार्य मानते हैं। अन्य लोग चेताते हैं कि प्राधिकार स्वतंत्रता का संभावित शत्रु है और विचारशक्ति और नैतिक दायित्व को क्षति पहुँचाता है; प्राधिकार सत्तावादी की ओर अभिमुख करने की प्रवृत्ति रखता है।

4. वैधता किसी राजनीतिक व्यवस्था की 'अधिकारपूर्णता' की ओर संकेत करती है। यह किसी शासन–व्यवस्था की स्थिरता और दीर्घकालिक उत्तरजीविता हेतु निर्णायक होती है, क्योंकि इसको न्यायसंगत अथवा स्वीकार्य माना जाता है। वैधता को व्यापक रूप से मान्य सांवैधानिक नियमों व विस्तृत जनसमर्थन की आवश्यकता हो सकती है; परन्तु राजनीतिक अथवा सामाजिक संभ्रांतों के हितार्थ इसको वैचारिक योजना व नियंत्रण की प्रक्रिया द्वारा भी तैयार किया जा सकता है।

(स्रोत : एण्ड्रयू हेवुड, *पॅलिटिकॅल थिअरी : ऐन इन्ट्रोडक्शन* (पालग्रेव, 1997), पृभठ 150।

11-8 vH;kl

1. सत्ता की संकल्पना और उसके विभिन्न आयामों को स्पष्ट करें।
2. सत्ता की संकल्पना संबंधी मार्क्सवादी तथा पाश्चात्य दृष्टिकोणों पर चर्चा करें।
3. सत्ता और प्राधिकार के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
4. प्राधिकार की संकल्पना को स्पष्ट करें।
5. समसामयिक अन्तरराष्ट्रीय राजनैतिक व्यवस्था में प्राधिकार की संकल्पना की जाँच करें।